International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
ISSN -2393-8048, January-June 2016, Submitted in January 2016, iajesm2014@gmail.com

हरियाणा के प्राचीन इतिहास का परिचय

सुनीता पुरोहित, शोधार्थी (इतिहास), जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
डॉ शशि कला, प्रोफेसर (इतिहास), जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

परिचय

'जीवित' छवियाँ: विषय, दायरा और विधि

भारत के उत्तरी राज्य, हरियाणा की पुरातात्विक विरासत, इतिहास, संस्कृति और मानव विकास की एक समृद्ध टेपेस्ट्री का खुलासा करती है। इसकी जड़ें उन प्राचीन सभ्यताओं में हैं जो कभी इस क्षेत्र में फली-फूली थीं, हरियाणा भर में बिखरे हुए पुरातात्विक स्थल इसके अतीत के विविध अध्यायों की एक आकर्षक झलक प्रदान करते हैं। "प्राचीन कलाकृतियाँ, आधुनिक इतिहास" एक लेंस के रूप में कार्य करता है जिसके माध्यम से हम हरियाणा की पुरातात्विक विरासत के गहन महत्व का पता लगा सकते हैं और समझ सकते हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:

सिंधु घाटी सभ्यता: हरियाणा भारतीय उपमहाद्वीप के ऐतिहासिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जिसके कुछ क्षेत्रों में सिंधु घाटी सभ्यता (लगभग 3300-1300 ईसा पूर्व) के स्थल शामिल हैं। राखीगढ़ी का प्राचीन शहर, जो सबसे बड़े हड़प्पा स्थलों में से एक है, हरियाणा के हिसार जिले में स्थित है। यहां की खुदाई से सुनियोजित सड़कों, जल निकासी प्रणालियों और उन्नत शिल्प कौशल के साक्ष्य के साथ एक जटिल शहरी बस्ती का पता चला है।

वैदिक काल: जैसे-जैसे सिंधु घाटी सभ्यता का ह्रास हुआ, वैदिक काल (लगभग 1500-500 ईसा पूर्व) के दौरान हरियाणा एक केंद्र बिंदु बन गया। हिंदू धर्म के सबसे पुराने पवित्र ग्रंथों में से एक, ऋग्वेद में हरियाणा के कई स्थानों का उल्लेख है। माना जाता है कि वैदिक ऋचाओं में मनाई जाने वाली सरस्वती नदी इस क्षेत्र से होकर बहती थी, जिसने क्षेत्र के सांस्कृतिक और धार्मिक लोकाचार पर गहरा प्रभाव डाला।

मौर्य और गुप्त साम्राज्य: हरियाणा ने मौर्य और गुप्त राजवंशों सहित साम्राज्यों का उत्थान और पतन देखा। पौराणिक महाराजा अग्रसेन से जुड़े अग्रोहा और एक महत्वपूर्ण बौद्ध केंद्र थानेसर जैसे स्थल इन अवधियों के दौरान फले-फूले, अपने पीछे पुरातात्विक अवशेष छोड़ गए जो समृद्धि और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की कहानियां सुनाते हैं।

मध्यकाल: मध्ययुगीन युग में हरियाणा को एक महत्वपूर्ण भूराजनीतिक और सांस्कृतिक केंद्र के रूप में देखा गया। यह क्षेत्र दिल्ली सल्तनत और मुगलों सहित विभिन्न शासकों के आक्रमणों का गवाह रहा है। फ़िरोज़पुर झिरका, अपनी किलेबंदी के साथ, इस युग के स्थापत्य और रणनीतिक विकास को दर्शाता है।

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल: ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के आगमन के साथ, हरियाणा में प्रशासनिक परिवर्तन हुए और पुरातात्विक अन्वेषण में गति आई। क्षेत्र के ऐतिहासिक स्थल विद्वानों की रुचि का विषय बन गए, जिन्होंने भारत के अतीत की विकसित समझ में योगदान दिया।

स्वतंत्रता के बाद का युग: स्वतंत्रता के बाद, 1966 में हरियाणा एक अलग राज्य के रूप में उभरा। इसकी पुरातात्विक विरासत को संरक्षित करने और प्रदर्शित करने के प्रयास तेज हो गए,
जिससे संग्रहालयों, अनुसंधान संस्थानों की स्थापना और संरक्षण पहल हुई। तब से राज्य ने अपनी समृद्ध ऐतिहासिक विरासत को सुरक्षित रखने में सक्रिय भूमिका निभाई है।

धर्म और उससे जुड़े प्रतीक, दुनिया भर में सबसे अधिक विवादित विषयों में से एक हैं। प्रत्येक आस्था अपने भीतर कई मान्यताओं और प्रथाओं को समाहित करती है जो उसे विशिष्ट बनाती है और जिसके माध्यम से वह अपनी पहचान बनाती है। आमतौर पर, हम किसी के विश्वास की कुछ प्रथाओं की

उत्पत्ति उससे जुड़े ग्रंथों के संग्रह से खोजते हैं जिन्हें हमेशा मौलिक स्थान दिया गया है। हालाँकि, प्रत्येक समुदाय पाठ्य नुस्खों और निषेधों का सख्ती से पालन नहीं करता है। इसके बजाय, यह समय के साथ अपनी स्वयं की प्रथाओं को विकसित करता है। यह लिखित शब्द बनाम वास्तविक अभ्यास है जो इस कार्य का प्रमुख विषय बन जाता है।

धार्मिक परंपराओं को समझने पर ध्यान केंद्रित करते समय, पूजा की उन वस्तुओं पर ध्यान देना अनिवार्य है जो इसके केंद्र में हैं। पवित्र मूर्तियां धार्मिक सामग्री का अभिन्न अंग हैं और अक्सर उनके निर्माण के क्षण से ही जीवित देखी जाती हैं। भक्त इन छवियों के माध्यम से आशीर्वाद पाने के लिए भगवान के साथ सीधा संवाद करने की कल्पना करते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जहां बहुत पहले के युग की पत्थर की छवियां समय की मार से बच गईं और लोगों द्वारा उनकी पूजा की जाती रही है। धार्मिक ऐतिहासिक अध्ययन पर आधारित यह कार्य मुख्य रूप से पत्थर की मूर्तियों के विशेष संदर्भ में वर्तमान मान्यताओं और प्रथाओं की गतिशीलता से निपटेगा जो इन समुदायों के पवित्र जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक-सांस्कृतिक घटनाओं और पवित्र परिदृश्य को परिभाषित करने में ऐतिहासिक रूप से कार्यात्मक वस्तुओं के रूप में मूर्तियों की भूमिका स्थापित करना प्रासंगिक है। अतीत में उनकी अवधारणा के समय से लेकर वर्तमान समय तक जहां उनकी एक अलग भूमिका थी, इन धार्मिक प्रतीकों की यात्रा का अनुसरण करना काफी दिलचस्प है, जहां इन छवियों ने एक अलग कार्य और रूप धारण कर लिया है। यहां, मैं ऐतिहासिक जांच के केंद्रीय विषय के रूप में धार्मिक पत्थर की मूर्तियों का उपयोग करने का इरादा रखता हूं। पाषाण प्रतिमाओं का ही चयन करने का एक विशेष कारण है। धातु की मूर्तियों की तुलना में जिन्हें आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया जा सकता है, पत्थर की कलाकृतियों की गतिशीलता इसकी तुलना में कठिन है और इसलिए, यह अधिक संभावना है कि ये अवशेष मूल रूप से एक ही क्षेत्र के हैं। इस प्रकार, इन्हें उनके मूल स्थान पर देखने की संभावना यानी जहां से इन्हें खोजा गया है, धातु छवियों की तुलना में अधिक है।

परंपरा के साथ प्रयास : एक ऐतिहासिक विवरण

भारतीय कला और वास्तुकला, विशेष रूप से मूर्तियों के प्रति ब्रिटिश प्रशासकों और सर्वेक्षणकर्ताओं का रवैया और विभिन्न दृष्टिकोण हैं जिनसे इस विषय पर विचार किया गया है। इसके लिए, उन्नीसवीं सदी की अवधि महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रमुख पुरातात्विक प्रथाएं जो बाद में पुरातात्विक जांच और उत्खनन में विकसित हुईं, इसी दौरान शुरू हुईं। मैं न केवल इस बात की जांच करूंगा कि ब्रिटिशों द्वारा 'स्थलों की फिर से खोज' करके स्थलों का धार्मिक इतिहास कैसे बनाया जा रहा था, बल्कि धार्मिक प्रतीकों पर उनके प्रभाव की भी जांच करूंगा। साथ ही इस कार्य में, "पुरातनत्ववाद" शब्द का उपयोग पुराने कलाकृतियों पुरातात्विक अवशेषों की खोज और संग्रह के चल रहे अभ्यास के अध्ययन के साथ मेल खाने के लिए एक ढीले अर्थ में किया जाएगा। हालाँकि, जिस विधि से इन पुरावशेषों को एकत्र किया जाता है और उनके संरक्षण, चित्रण और व्याख्या की प्रक्रिया को अधिक व्यवस्थित तरीके से अलग से निपटाया जाएगा।

भारत में पुरातनवाद के इतिहास का पता लगाने के लिए, 'पुरातनवाद' और 'पुरातत्व' और उनके इतिहास के बीच अंतर को समझना महत्वपूर्ण है। उपिंदर सिंह के अनुसार:

यूरोपीय पुरातत्व में, 'पुरातनवाद' का तात्पर्य पुरावशेषों की खोज, संग्रह और विवरण, या कलाकृतियों या स्मारकों के शौकिया अध्ययन से है। हालाँकि, भारत के संदर्भ में, उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में यह प्राचीन ग्रंथों, भाषाओं, शिलालेखों, सिक्कों, स्मारकों, कालक्रम, पुरावशेषों और इतिहास के अध्ययन को दर्शाता है। यह केवल उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में था कि "पुरातत्व" शब्द सामने आया और प्राच्यवादी प्रवचन के भीतर एक विशिष्ट पहचान ग्रहण करना शुरू कर दिया, जो अतीत के भौतिक अवशेषों, कलाकृतियों, स्थलों और स्मारकों से संबंधित अध्ययन की एक शाखा को दर्शाता है।

भारत में पुरावशेषों के अध्ययन का प्रारंभिक चरण भारत में यूरोपीय यात्रियों के आगमन के साथ शुरू हुआ था। भारत में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की स्थापना के साथ, अध्ययन को तब गति मिली जब कंपनी, जो अब तक भारत की स्वामी बन चुकी थी, ने देश के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के अपने प्रयास तेज कर दिए। इन उद्यमों के शुरुआती एजेंट कंपनी के नागरिक और सैन्य अधिकारी थे, जिन्होंने देश का सर्वेक्षण किया और भारतीय जीवन के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्रों के उल्लेख के साथ-साथ अपने नियंत्रण वाले क्षेत्रों के इतिहास और स्थलाकृति का निर्माण करने का प्रयास किया। यह "औपनिवेशिक निर्माणों के भीतर उपनिवेशित लोगों को ऐतिहासिक बनाने और सावधानीपूर्वक दस्तावेज़ीकरण, वर्गीकरण, विवरण और अनुभवजन्य साक्ष्य के विश्लेषण के माध्यम से भारतीय वास्तुकला के तुलनात्मक रैखिक इतिहास तक पहुंचने के लिए" एक एजेंडा था। प्रारंभ में, ब्रिटिश जो भारत के ऐतिहासिक अतीत को पुनः प्राप्त करने का इरादा रखते थे, उन्होंने कुछ पूर्वकल्पित धारणाओं के साथ शुरुआत की। किए गए सर्वेक्षणों में यह दर्शाया गया था कि "ब्राह्मणवाद, एक अपरिवर्तित और अपरिवर्तनीय धर्म होने के बजाय, जो युगों से अस्तित्व में था, तुलनात्मक रूप से आधुनिक मूल का था, और इसमें लगातार परिवर्धन और परिवर्तन होते रहे हैं; ऐसे तथ्य जो साबित करते हैं कि भारत में ईसाई धर्म की स्थापना अंततः सफल होनी चाहिए। यह काफी हद तक रिपोर्टों में भारत के अतीत और वर्तमान के निर्माण के कारण था जो देश की ऐतिहासिक विरासत की रक्षा के लिए औपनिवेशिक सरकार की भविष्य की योजनाओं से सीधे जुड़ा हुआ था।

ब्रिटिश साम्राज्य के गठन के बाद, सर्वेक्षण अधिक व्यापक और संरचित हो गए, जो 1871 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थापना से स्पष्ट है। पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थापना के साथ, शिथिल रूप से संगठित पुरातात्विक और पुरातात्विक जांच के वर्षों में उल्लेखनीय गति आई। . सर अलेक्जेंडर कनिंघम के आगमन के साथ पुरातनवाद को एक प्रथा के रूप में एक नया चेहरा मिला। 1840 के दशक से उनका विशिष्ट लक्ष्य भारत के प्राचीन ऐतिहासिक भूगोल को वास्तविक स्थलों और स्मारकों से जोड़कर उसका पुनर्निर्माण करना था।

1870 के बाद से, कई वर्षों तक, कनिंघम ने भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग के खंडहरों के बीच कई पुरातात्विक अन्वेषण किए। उनकी पुरातात्विक जाँच और टिप्पणियाँ कई रिपोर्टों के रूप में प्रकाशित हुईं। पुरातात्विक अवशेषों के बारे में अन्य आवश्यक स्पष्टीकरणों के साथ, जिन्हें वह अपने दौरों के दौरान देखने में कामयाब रहे, इन रिपोर्टों से टूटी हुई मूर्तिकला के टुकड़ों और उन्हें पुनर्प्राप्त करने, एकत्र करने और धार्मिक मंदिरों और पेड़ों के आसपास पूजा करने के तरीके के व्यापक दस्तावेज़ीकरण का भी पता चलता है। कनिंघम ने देखा:

कई पुराने गांवों में विचित्र आकार के या रंगीन पत्थरों के साथ मूर्तिकला के टुकड़े पाए जाएंगे, जो किसी बड़े पेड़, आम तौर पर या तो बरगद या पीपल के नीचे एकत्र किए गए हैं। मूर्तियों पर मुझे अक्सर शिलालेखों के निशान मिले हैं; लेकिन आमतौर पर ये खंडित अवशेष, गांव के पेड़ों के नीचे एक साथ ढेर कर दिए जाते हैं, जो कि देवताओं द्वारा पानी के अभिषेक और लाल सीसे के अभिषेक के कारण खराब हो जाते हैं। हालाँकि, वे यह दिखाने के लिए काम करते हैं कि जब इन मूर्तियों को निष्पादित किया गया था तो गाँव के पूर्व निवासियों का धर्म क्या था।

कनिंघम ने हरियाणा के वर्तमान राज्य में स्थित कई स्थलों, जैसे अमीन, हांसी, हिसार, कुरूक्षेत्र, पिहोवा, रोहतक, सिरसा, थानेश्वर, पिंजौर आदि की खोज की और स्मारकों, शिलालेखों, सिक्कों, स्थापत्य टुकड़ों पर चर्चा की। और हमारे उद्देश्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण, मंदिरों में, पवित्र तालाबों के पास, या पवित्र पेड़ों के नीचे रखी गई मूर्तियाँ। कनिंघम ने वर्तमान हरियाणा राज्य के थानेसर और कुरुक्षेत्र जैसे कई महत्वपूर्ण धार्मिक केंद्रों की ओर इशारा किया। उन्होंने उल्लेख किया कि थानेसर या स्थानेश्वर या तो स्थान या ईश्वर या महादेव के निवास स्थान से, या स्थान और ईश्वर के उनके नामों के जंक्शन

से लिया गया था। थानेसर के ठीक आसपास का देश, जो सरस्वती और दृषाद्वती नदियों के बीच था, कुरूक्षेत्र, या "कुरु का क्षेत्र या भूमि" के नाम से जाना जाता था। कहा जाता है कि कुरु शहर के दक्षिण में महान पवित्र झील के तट पर एक तपस्वी बन गया था। इस झील को ब्रह्म-सार, रामह्रद या वायव-सार और पवन सार जैसे विभिन्न नामों से बुलाया जाता था। इस क्षेत्र में कौरवों और पांडवों से जुड़े लगभग 360 पवित्र स्थान थे।

मध्ययुगीन काल में थानेसर के इतिहास का पता लगाते हुए, कनिंघम ने उल्लेख किया कि महमूद गजनी के समय में, चक्र-तीरथ कुरुक्षेत्र का सबसे प्रसिद्ध मंदिर था। उन्होंने विस्तार से बताया कि अबू रिहान ने दर्ज किया है कि जब मुहम्मदियों ने थानेसर पर कब्जा कर लिया, तो उन्हें एक मूर्ति मिली, जिसे स्थानीय आबादी कौरवों और पांडवों के युद्ध जितनी पुरानी मानती थी। इस आदमकद प्रतिमा को चक्रस्वामी या 'चक्र के स्वामी' कहा जाता था, जो भगवान विष्णु के लोकप्रिय नामों में से एक था। नामकरण के संबंध में, कनिंघम ने कहा कि फ़रिश्ता के इतिहास में, इस नाम को जग-सोम में बदल दिया गया है, जिसे फ़ारसी अक्षरों में चक्रस्वामी के लिए गलत समझा जाता है। उन्होंने आगे कहा कि दोनों मध्ययुगीन इतिहासकारों, अबू रिहान और फ़रिश्ता के अनुसार, मूर्ति को तोड़ने और पैरों से कुचलने के लिए गजनी ले जाया गया था। कनिंघम ने थानेसर के निकटतम पड़ोस में कुरुध्वज तीरथ और राजा करण का किला का भी उल्लेख किया है। कुरुध्वज में, उन्हें शिव की पूजा से जुड़ी मूर्तिकला के कई टुकड़े मिले, लेकिन साइट की प्राचीनता का सबसे निश्चित प्रमाण 9 से 10.5 इंच चौड़ाई वाली कई बड़ी ईंटों की खोज थी, जिनका उपयोग निर्माण में किया गया था। दो आधुनिक मंदिरों की दीवारें।

कनिंघम ने थानेसर में एक पुराना खंडहर किला स्थित किया। उन्होंने यहां पथरिया मस्जिद या 'पत्थर की मस्जिद' का भी उल्लेख किया। यह विशेष इमारत पूरी तरह से हिंदू मंदिरों के अवशेषों से बनी थी, इसके मेहराब सादे खंभों पर टिके हुए थे। आँगन में, उन्हें 2 फीट वर्गाकार एक अलंकृत स्तंभ का एक भाग मिला, जिसके कोने छिपे हुए थे, और उसके मुख पर हिंदू देवताओं के अवशेष थे। वहाँ एक गोल पत्थर भी था, जिसका व्यास 19.5 इंच और मोटाई 11 इंच थी, जिसके बीच में एक छेद था। इसे तस्बीह-के-दाने या "रोज़री बेरी" के नाम से जाना जाता था, लेकिन इसके आकार और आकार को देखने के बाद, उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यह एक बार एक हिंदू मंदिर के शिखर का हिस्सा रहा होगा।

जब इनमें से कुछ अवशेषों को वर्गीकृत करने की बात आई तो कनिंघम बेहद संवेदनशील और गहन थे, जो उनकी रिपोर्टों में काफी स्पष्ट है। कुछ संरचनाओं की पहचान के संबंध में, कनिंघम ने उनकी मूल प्रकृति का विश्लेषण करने के तरीके के बारे में कुछ उपयोगी दिशानिर्देश दिए। उदाहरण के लिए, उन्होंने कहा कि:

सभी मंदिरों में प्रवेश द्वार के ऊपर और गर्भगृह के द्वार के ऊपर की मूर्तियों की प्रकृति पर भी ध्यान देना चाहिए। उनसे, हम आम तौर पर इमारत के मूल उद्देश्य को निर्धारित कर सकते हैं, क्योंकि द्वार के मध्य में उस देवता की आकृति रखना सामान्य प्रथा थी, जिसे मंदिर समर्पित था, जबकि पार्श्व के आलों पर या तो उनकी आकृतियाँ होती थीं। हिंदू त्रय के अन्य दो सदस्यों द्वारा, या उसकी पत्नियों द्वारा, या स्वयं के अन्य प्रतिनिधित्वों द्वारा। इस प्रकार, ग्वालियर में तेली मंदिर, जो मूल रूप से विष्णु को समर्पित था, जैसा कि गरुड़ के ऊंचे प्रवेश द्वार के चित्र से पता चलता है, बाद में शैवों ने कब्जा कर लिया, जिन्होंने अपने स्वयं के भगवान की एक आकृति के साथ एक निचला द्वार जोड़ा और अंदर एक लिंगम रखा। .

पवित्र स्थानों को ऐतिहासिक बनाना: केस स्टडीज

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, यह अध्याय पत्थर की मूर्तियों और वास्तुकला के टुकड़ों और आधुनिक मंदिरों और तीर्थस्थलों में उनके वर्तमान स्थान पर केंद्रित होगा। मैं यहां धार्मिक छवियों को देखने के विभिन्न दृष्टिकोणों पर चर्चा करूंगा और उनकी प्रतीकात्मक विशेषताओं के बारे में विस्तार

से बताऊंगा। इस अध्याय में सभी मूर्तियों और टुकड़ों का उल्लेख मिलेगा, भले ही वे मूल रूप से किसी भी काल और राजवंश के हों। अपने फील्डवर्क के माध्यम से, मैंने हरियाणा के विभिन्न गांवों से डेटा एकत्र किया है जहां पत्थर की छवियां बताई गई हैं। इनमें कुषाण काल से लेकर प्रारंभिक-मध्यकाल तक का काल शामिल है। अधिकांश ऐतिहासिक संरचनाएँ और मूर्तियाँ या तो खो गई हैं या नष्ट हो गई हैं। गांवों में स्थित छोटे धार्मिक केंद्र, मंदिर और धार्मिक स्थल आमतौर पर धार्मिक परिदृश्य में अपने तुच्छ आकार, सीमित अनुयायी और लोकप्रियता के कारण अतीत में नष्ट होने से बच गए। अधिकांश मूर्तियां जो बची हुई हैं, उनका आंशिक कारण यह है कि या तो भौतिक अवशेषों को जमीन के नीचे दबा दिया गया था, तालाबों में फेंक दिया गया था या समकालीन गांव के मंदिरों में जगह मिल गई थी। हालाँकि मैंने छवियों और उनकी उत्पत्ति की अवधि को पहचानने की कोशिश की है, लेकिन कई बार उनके वर्तमान जीर्ण-शीर्ण स्वरूप के कारण यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन गया है। अपने डेटा को अधिक सटीक बनाने के लिए, मैंने अपनी खोजों को सारणीबद्ध किया है और छवियों के मूल स्वरूप, और फिर ऐतिहासिक संदर्भ, पवित्र स्थान में वर्तमान स्थिति और उनके बदले हुए स्वरूप का पता लगाने की कोशिश की है।

जिला सोनीपत

गुज्जर-खीरी

देखने में आधुनिक प्रतीत होने वाले गाँव के मंदिर से कई वास्तुशिल्प टुकड़े मिले हैं जो प्रारंभिक मध्ययुगीन काल के हैं। यह मंदिर एक टीले पर स्थित है और इसके पास एक तालाब है जिसके बारे में माना जाता है कि यह बहुत प्राचीन है। जैसे ही कोई आंतरिक हॉल की ओर बढ़ता है, वहां बलुआ पत्थर के चार नक्काशीदार खंभे हैं जो गर्भगृह की छत को सहारा दे रहे हैं। दो स्तंभों में शंख पकड़े हुए दो पुरुष आकृतियों को दर्शाया गया है। दूसरी ओर के अन्य दो स्तंभों के आधार पर कमल और उसके शीर्ष पर अन्य पुष्प डिजाइन खुदे हुए हैं)।

चित्र: शिव मंदिर में स्तंभ

मंदिर परिसर के भीतर, हॉल के बगल में एक बरगद का पेड़ है जिसके नीचे तीन मूर्तिकला टुकड़े रखे गए हैं जिन्हें पुजारी द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार "त्रिवेणी" (ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर) के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। टुकड़ों में से एक बिना सिर वाले नंदी, बैल, भगवान शिव का वाहन है, दूसरा एक स्तंभ का आधार है, और सेट के तीसरे हिस्से की पहचान नहीं की जा सकी है। स्थानीय लोग हर सोमवार को 'त्रिवेणी' पर जाते हैं और मन्नत मांगते समय लाल धागा बांधते हैं। मेरी यात्रा से कुछ दिन पहले, मंदिर के एक हिस्से की खुदाई की गई थी जिसमें बड़ी, चौकोर आकार की ईंटें और कुछ टूटी हुई मूर्तियाँ मिलीं जिन्हें ग्रामीणों ने लूट लिया था। पुजारी ने यह भी उल्लेख किया कि जैसे ही खबर फैली, कुछ छवियां चोरी हो गईं और पुजारी की हिरासत में बची हुई मूर्ति को चुराने के कई प्रयास किए गए। स्थिति को ध्यान में रखते हुए, ग्रामीणों ने सर्वसम्मति से शिव और पार्वती की इस छवि को गांव के सरपंच (ग्राम प्रधान) के कब्जे में रखने का निर्णय लिया। यह शिव की गोद में बैठी हुई पार्वती की बलुआ पत्थर की छवि है, दोनों नंदी पर सवार हैं। शिव त्रिशूल धारण किए हुए हैं और दोनों अपने परिचारकों, गणों से घिरे हुए हैं। ऊपर बायीं और दायीं ओर ब्रह्मा और विष्णु विराजमान हैं ।

चित्र: गुज्जर-खीरी से उमा-महेश्वर

जुआन माजरा

एक टीले पर स्थित गाँव के मंदिर से एक शिव लिंग और एक मूर्ति मिली जिसमें फर्श पर नंदी के साथ दो आकृतियों को दर्शाया गया था। एक कृत्रिम योनि को ग्रेनाइट पत्थर पर उकेरा गया है जिसमें ये सभी आकृतियाँ एक साथ रखी गई हैं। यह शिव के देव होने का पूर्ण आभास देता है। ये दोनों टुकड़े बलुआ पत्थर के हैं और आकृतियाँ किसी बड़ी मूर्ति का टूटा हुआ हिस्सा प्रतीत होती हैं, लेकिन आकृतियों की मौजूदा स्थिति के कारण इनकी पहचान नहीं की जा सकी है। आमतौर पर वर्गाकार आधार (ब्रह्म-भाग), अष्टकोणीय मध्य (विष्णु-भाग) और गोलाकार शीर्ष (रुद्र-भाग) वाला लिंग 10वीं शताब्दी ईस्वी में आम था (चित्र 3.3)। यह गांव का सबसे पुराना मंदिर है और स्थानीय लोग इस मंदिर की उत्पत्ति महाभारत काल से मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि पांडवों द्वारा अपने अज्ञातवास के दौरान यहां शिवलिंग स्थापित किया गया था।

संग्रहालय का मिथक

हरियाणा में स्थित पांच चुनिंदा संगठनों पर केंद्रित होगा जिन्होंने अनजाने में या जानबूझकर
और संरक्षण में योगदान दिया। जो बात इन संस्थानों को अन्य सरकारी संगठनों से बिल्कुल अलग बनाती है, वह यह है कि वे पुरावशेषों की खरीद और प्रदर्शन की प्रक्रिया में कुछ धार्मिक समानताएं प्रकट करते हैं। क्षेत्र अध्ययन के दौरान, मैंने इन स्थानों का दौरा किया और 'धार्मिक छवियों और चिह्नों' या 'राष्ट्रीय विरासत के अवशेषों' के संग्रह की प्रथा देखी, जिसका पालन उनके संरक्षण के लिए वैज्ञानिक ज्ञान और तकनीकों पर अधिक ध्यान दिए बिना किया जा रहा था। इस अध्याय का उद्देश्य इन 'संग्रहालयों' की स्थापना के पीछे के संदर्भ, प्रकृति और उद्देश्य को समझने और दर्शकों द्वारा उनकी व्याख्या कैसे की जा रही है, इस पर ध्यान केंद्रित करना है। क्या ये संगठन 'संग्रहालय' की परिभाषित श्रेणी में आते हैं और उनकी स्थापना से लेकर वर्तमान समय तक उनकी यात्रा कैसी रही है? 'धार्मिक खजाने' का यह रूप उनके दर्शकों पर क्या प्रभाव डालता है? क्या किसी धार्मिक मूर्ति की पवित्रता को तब भी बनाए रखना संभव है जब इसे अधिक 'धर्मनिरपेक्ष' वातावरण में रखा गया हो और इन धार्मिक प्रतीकों की पहचान एक स्थान से दूसरे स्थान पर उनके आंदोलन के साथ कैसे निर्मित और पुनर्निर्मित होती है? क्या किसी प्रतिमा को मंदिर से संग्रहालय में स्थानांतरित करने से पर्यवेक्षकों के लिए इसकी धार्मिक छवि बदल जाती है? ये कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिन पर इस अध्याय में चर्चा की जाएगी।

इसके अलावा, सारणीबद्ध रूप में चर्चा के साथ-साथ प्रत्येक साइट का संग्रह भी आयोजित किया गया। टूटी हुई और अक्षुण्ण दोनों प्रकार की कलाकृतियों को उनके प्रतीकात्मक विवरणों के साथ सूचीबद्ध करने का उद्देश्य उन्हें दस्तावेजित करना और प्रकाशित करना है ताकि विरासत के लुप्त होने पर भी कुछ प्रकार के फोटोग्राफिक साक्ष्य भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित रह सकें। हालाँकि यह शोध मुख्य रूप से पत्थर की मूर्तियों पर केंद्रित है, लेकिन विभिन्न प्रकार के ऐतिहासिक अवशेषों की सुरक्षा में इन संस्थानों के योगदान को स्वीकार करने के लिए अन्य पुरातात्विक और भौतिक अवशेषों का भी उल्लेख किया जाएगा। इस अध्याय की शुरुआत में, मैं न केवल हरियाणा में बल्कि भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग में सबसे अधिक मांग वाले 'हिंदू' धार्मिक गंतव्य और तीर्थस्थल में से एक में स्थित संग्रहालय स्थल के बारे में उल्लेख करूंगा। इस साइट पर एक संग्रहालय है और यह लाखों वार्षिक आगंतुकों और अनुयायियों के लिए प्रसिद्ध पवित्र टर्मिनस है, जो पवित्र शहर कुरुक्षेत्र की यात्रा करते हैं।

श्री कृष्ण संग्रहालय, कुरूक्षेत्र

कुरुक्षेत्र, या कौरवों की भूमि जिसे 'महाभारत की भूमि' के रूप में भी जाना जाता है, उत्तरी भारत के लोगों के लिए एक बेहद लोकप्रिय तीर्थस्थल है और अक्सर तीर्थयात्री अपने पापों को धोने और तपस्या करने के लिए यहां आते हैं। कनिंघम ने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया है कि :

लोकप्रिय धारणा के अनुसार, सटीक संख्या (तीर्थ केंद्रों की) 360 है, लेकिन कुरु-क्षेत्र महात्म्य में दी गई सूची 180 स्थानों तक सीमित है, जिनमें से आधे, या 91, पूज्य की रेखा के साथ उत्तर में हैं सरस्वती नदी. हालाँकि, इस सूची में स्वीकृत महत्व के स्थानों, जैसे कि पुंडरी में नागाहड़ा, बस्थली में व्यासस्थल, बालू में पारासरतीर्थ और नाराणा के पास सागा में विष्णु-तीरथ के इतने सारे स्थान शामिल नहीं हैं कि मुझे विश्वास करने की इच्छा होती है। 360 की लोकप्रिय संख्या को बढ़ा-चढ़ाकर पेश नहीं किया जा सकता।

ऐसा माना जाता है कि महाकाव्य महाभारत के महान नायकों, पांडवों और उनके दुष्ट चचेरे भाइयों, कौरवों के बीच वीरतापूर्ण युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ था। महाकाव्य का मुख्य नायक सबसे अधिक पूजनीय और प्रसिद्ध भगवान में से एक है, भगवान कृष्ण, जिन्होंने युद्ध की शुरुआत से ठीक पहले भगवद-गीता के रूप में अपना उपदेश अपने शिष्य अर्जुन को दिया था, जो अपने ही रिश्तेदारों से लड़ने में झिझक रहा था। इन्हीं कारणों से कुरूक्षेत्र को एक पवित्र स्थान माना जाता है। यह न केवल बुराई पर सत्य की ऐतिहासिक जीत का प्रतीक है, बल्कि एक ऐसा स्थान भी है जहां लोग अपने भगवान, भगवान कृष्ण से आध्यात्मिक सांत्वना और मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। कृष्ण का महत्व इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि जैसे ही कोई शहर में आता है, प्रवेश द्वार के शीर्ष पर रथ पर अर्जुन को उपदेश देते हुए कृष्ण का एक विशाल और प्रमुख चित्रण होता है। इसलिए, भगवान को समर्पित एक संग्रहालय की स्थापना सरकार की ओर से एक उचित विचार था क्योंकि यह शहर पवित्र माना जाता है, और यहां साल के अधिकांश समय हजारों जिज्ञासु आगंतुकों और तीर्थयात्रियों की भीड़ रहती है। संग्रहालय की लोकप्रियता का पता इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि एक ही दिन में छह सौ से अधिक पर्यटक इसे देखने आते हैं। जैसा कि बताया गया है, इनमें से कई विदेशी पर्यटक हैं, जो इस देवता के समर्पित भक्त हैं। उन्हें अक्सर गाने गाते, मंत्रों का जाप करते और यहां तक कि कुरसी पर रखी मूर्तियों के आसपास नृत्य करते हुए देखा जाता है। उनके लिए, प्रत्येक कलाकृति उनके प्रिय भगवान का एक प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व है, जिसके बारे में उनका मानना है कि वह अपने अनुयायियों को आशीर्वाद और मार्गदर्शन देता है।

इस संग्रहालय के बगल में 'कुरुक्षेत्र पैनोरमा और विज्ञान केंद्र' है जो विज्ञान को धर्म के साथ जोड़कर अपनी विशिष्टता पर जोर देता है। इस विज्ञान केंद्र का मुख्य आकर्षण यह है कि यह कुरुक्षेत्र के युद्ध का जीवंत चित्रमाला प्रदर्शित करता है और उस दौरान हुई घटनाओं की 'वैज्ञानिक' व्याख्या के साथ महाभारत के महान युद्ध को प्रदर्शित करता है। यह अंकगणित, खगोल विज्ञान, शल्य चिकित्सा, परमाणु की संरचना आदि की प्राचीन भारतीय अवधारणाओं पर भी प्रदर्शन प्रदर्शित करता है। हरियाणा सरकार द्वारा कुरुक्षेत्र में निर्मित अधिकांश संरचनाएं और आगंतुकों को देवता के जीवन के एक रोमांचक एपिसोड की कल्पना करने का मौका प्रदान करने का एक प्रयास है।

श्री कृष्ण संग्रहालय, जिसे श्री कृष्ण संग्रहालय के नाम से जाना जाता है, की थीम कृष्ण के व्यक्तित्व और उनके जीवन पर आधारित विषयों के साथ-साथ महाभारत के प्रसंगों के इर्द-गिर्द घूमती है। यह हमारे देश में पाया जाने वाला एक दुर्लभ संग्रहालय है और इसमें कृष्ण, महाभारत और कुरुक्षेत्र से संबंधित वस्तुओं की एक श्रृंखला है। कृष्ण के बहुमुखी व्यक्तित्व पर आधारित एक संग्रहालय स्थापित करने का विचार पहली बार 1987 में कुरूक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा अपनी सांस्कृतिक गतिविधियों के एक भाग के रूप में किया गया था। उस समय बोर्ड के अध्यक्ष भारत रत्न श्री गुलज़ारी लाल नंदा थे

जिन्होंने प्रारंभिक सेटिंग का प्रावधान किया था। 1991 में, इसे इसके वर्तमान भवन में स्थानांतरित कर दिया गया और बाद में, 1995 में इसमें एक नया ब्लॉक जोड़ा गया। वर्तमान में, संग्रहालय में नौ गैलरी हैं जिनमें लगभग एक हजार वस्तुएं प्रदर्शित हैं जिन्हें देश के विभिन्न हिस्सों से एकत्र किया गया है। उपहार, दान, खरीद, अन्वेषण और खुदाई के दौरान पाए गए चीज़ों के रूप में। संग्रहालय इन उत्कृष्ट कृतियों और संग्रहों के माध्यम से कृष्ण के जीवन का वर्णन करता है, जो एक प्रिय भगवान, विष्णु के अवतार, एक सक्षम प्रशासक और एक सर्वोच्च प्रेमी के रूप में विविध भूमिकाओं को दर्शाते हैं।

खतरे में विरासत: विधान के माध्यम से संरक्षण

इस पूरे काम के दौरान जिन चिंताओं ने मुझे परेशान किया उनमें से एक है मूर्तियों और अन्य ऐतिहासिक कलाकृतियों के दस्तावेज़ीकरण का महत्व। यह न केवल स्वतंत्र पहचान है जो ग्रामीण धार्मिक सामग्री में छवियां ग्रहण करती हैं, बल्कि यह भी है कि जब वे विदेश यात्रा करते हैं तो वे देश की सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक कैसे बन जाते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जहां इन पुरावशेषों का लेन-देन एक 'समझौता ज्ञापन' का प्रतीक है, जो दो देशों के बीच मैत्रीपूर्ण गठबंधन का विस्तार है। इनमें से अधिकांश पुरावशेष अवैध रूप से देश छोड़ कर चले गए हैं। ऐसे कई संगठन और साइटें हैं जिन्होंने चोरी और खोए हुए पुरावशेषों की पुनर्प्राप्ति के लिए समर्पित रूप से काम किया है। उदाहरण के लिए, किरीट मनकोडी ने उन छवियों को पुनः प्राप्त करने के लिए बड़े पैमाने पर काम किया है जो भारत के विभिन्न हिस्सों से चुराई गई थीं और अंतरराष्ट्रीय संग्रहालयों और कला संग्रहकर्ताओं में उभरी हैं। उदाहरण के लिए, इंडिया प्राइड प्रोजेक्ट ऐसी एक और संस्था है। समय पर दस्तावेज़ीकरण के कारण ही इन छवियों का पता लगाया जा सका।

रिचर्ड डेविस ने अपने पेपर में उल्लेख किया है कि कैसे हिंदू भगवान शिव को स्वयं लंदन में रानी की बेंच के सामने वादी के रूप में पेश होना पड़ा और अपनी चोरी की गई संपत्ति की वापसी के लिए मुकदमा दायर करना पड़ा। लंदन के संडे टाइम्स, 21 फरवरी 1988 के अखबार का हवाला देते हुए, जिसका शीर्षक था "सुइंग शिवा डिसमेज़ डीलर्स" डेविस ने इस बात पर जोर दिया कि यह कैसे रिपोर्ट किया गया था:

डेविस ने तर्क दिया कि यहां शिव के कार्यों ने "मध्यकालीन दक्षिण भारतीय मंदिर प्रथाओं के जटिल और विरोधाभासी अंतर्संबंधों, धर्मशास्त्र परंपरा के शास्त्रीय भारतीय कानूनी प्रवचन और औपनिवेशिक काल के ब्रिटिश और भारतीय न्यायविदों के प्रयासों को स्पष्ट करने का अवसर प्रदान किया।" हिंदू धार्मिक संस्थानों को संचालित करने के लिए उचित कानूनी सिद्धांत"। दिलचस्प बात यह है कि डेविस ने बताया कि कैसे मध्ययुगीन दक्षिण भारत में, शिलालेखों में उल्लेख किया गया है कि हिंदू मंदिरों की केंद्रीय छवियां या प्रतीक जीवित देवता और संपत्ति के मालिक हैं। इस प्रकार ये शिलालेख साक्ष्य के रूप में कानूनी दस्तावेज बन जाते हैं।

अल्र्ट और फोलन द्वारा उल्लिखित इसी तरह के एक मामले में लेखकों ने "बुद्ध के उपासक" नामक एक मूर्ति के दस्तावेजी साक्ष्य प्रदान किए हैं, जो आंध्र प्रदेश, चंदावरम में बौद्ध स्थल के पास स्तूप से खुदाई की गई थी, और 2001 में साइट संग्रहालय से चोरी हो गई थी। , बाद में अवैध रूप से भारत से निर्यात किया गया। इस मामले ने मंदिर डकैतियों और सांस्कृतिक संपत्ति के अवैध व्यापार के संबंध में एक कला डीलर की भूमिका को प्रकाश में लाया। जाहिरा तौर पर, डीलर ने वर्ष 2002-2011 के बीच ऑस्ट्रेलिया की नेशनल गैलरी को भारी मात्रा में बाईस कलाकृतियाँ बेचीं। यह विशेष टुकड़ा 2005 में उसी संग्रहालय द्वारा खरीदा गया था और 2006 में भारतीय आर्ट गैलरी में प्रदर्शित किया गया था। लेखकों ने उल्लेख किया है कि कैसे विवाद में फंसने से गैलरी की प्रतिष्ठा खराब हुई और दोनों देशों के रिश्ते में भी तनाव आया। बाद में, भारत सरकार के अनुरोध से पहले ही ऑस्ट्रेलियाई अधिकारियों द्वारा मूर्तिकला के एक सहज स्वैच्छिक प्रत्यावर्तन को मंजूरी दे दी गई थी। फिर छवि को राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली भेज दिया गया।

फ़ील्डवर्क शुरू करने से पहले, मैंने उन स्थलों पर ध्यान दिया, जिनका उल्लेख विभिन्न पुस्तकों और पत्रिकाओं में किया गया था, जो राज्य में पाई गई पत्थर की मूर्तियों से संबंधित थे। डी. हांडा और सी.पी. उदाहरण के लिए, सिंह की पुस्तक स्कल्पचर्स फ्रॉम हरियाणा, एंड अर्ली मेडीवल आर्ट ऑफ हरियाणा में हरियाणा राज्य के संग्रहालयों, मंदिरों और तीर्थस्थलों के पास सैकड़ों मूर्तियों का उल्लेख है। हांडा ने कबूल किया कि कैसे इस मूर्तिकला विरासत को भ्रष्ट लोगों द्वारा निशाना बनाया जा रहा था, जो उन्हें गांव के मंदिरों से चुरा लेते थे और बाद में देश से बाहर तस्करी कर ले जाते थे। उदाहरण के लिए हांडा ने इसका उल्लेख किया

जैसा कि ग्रामीणों ने शिकायत की थी, वामन और मोहनबाड़ी, झाड़ली, लूलोध, सुधराना और सुंदेहरी से अन्य मूर्तियां चोरी हो गईं। जिला फरीदाबाद के अहरवां से कई मूर्तियां चोरी हो गई हैं। स्थानीय लोग बताते हैं कि गुड़गांव जिले के पुनाहना के पास बिनवा के पुराने टीले से प्राप्त जैन मूर्तियां चोरी हो गईं। कई साल पहले नई दिल्ली के एक आलीशान घर पर छापे के परिणामस्वरूप हरियाणा सहित पड़ोसी राज्यों से एकत्र की गई सैकड़ों कलाकृतियाँ जब्त की गईं।

जब मैं उन मूर्तियों की खोज में गया जिनका उल्लेख हांडा और सिंह ने किया था, तो उनमें से लगभग आधी छवियां उनके काम के प्रकाशित होने के बाद से ही गायब हो चुकी थीं। क्षेत्र सर्वेक्षण के दौरान, ग्रामीणों और मंदिरों के पुजारियों ने उल्लेख किया कि खोजी गई सभी छवियों में से केवल कुछ ही धार्मिक केंद्रों में अपना उचित स्थान पाने में सफल रहीं। राष्ट्रीय और विदेशी बाजार में उनके आंतरिक मूल्य के कारण, कई छवियां मंदिरों में उनकी स्थापना से पहले या बाद में चोरी हो जाती हैं। पिछले कुछ दशकों में तस्करी के दौरान सीमा शुल्क विभाग और स्थानीय पुलिस द्वारा कई तस्वीरें जब्त की गईं, लेकिन तथ्य यह है कि तमाम प्रयासों के बावजूद चोरी लगातार जारी है। मैंने भी ऐसी कई घटनाएं देखी हैं, जहां छवियां, मुख्य रूप से पत्थर की मूर्तियां, जो पहले पवित्र मंदिर या संग्रहालय के संग्रह का हिस्सा थीं, प्रभावशाली स्थानीय लोगों या सत्ता में अन्य लोगों द्वारा हटा दी गईं। डिजिटलीकरण, राष्ट्रों के बीच सहयोग और संग्रहालयों द्वारा अपनाए जाने वाले नैतिक दिशानिर्देशों और कोडों के माध्यम से अभिलेखों तक पहुंच में वृद्धि के बावजूद, कला अपराध का बाजार फल-फूल रहा है।

निष्कर्ष

विभिन्न समय क्षेत्रों और संदर्भों में विभिन्न कलाकृतियों की कल्पना करते हुए मेरा काम सदियों से चला आ रहा है। सजावटी टुकड़ों से लेकर पूजा में दिव्यताओं से लेकर कला के नमूनों तक, वस्तुओं के रूप, अर्थ और स्थिति उनके परिवर्तित संदर्भों और सेटिंग्स के जवाब में बदलती रहीं। निरंतर परिवर्तन के बावजूद, प्रदान की गई नई सेटिंग्स में बोलने के तरीके की छवियां नए सिरे से उभर कर सामने आई हैं। एक उत्तर जो मैं चाह रहा था, वह यह था कि क्या ढीली मूर्तियों और उन स्मारकों से रहित टुकड़ों का अध्ययन करना संभव है जिनका वे कभी हिस्सा थे? जब ये टुकड़े मिल जाते हैं तो क्या होता है? क्या किसी संग्रहालय में किसी लेबल के साथ एक कुरसी पर बैठना ही इन वस्तुओं का अंतिम गंतव्य है? हरियाणा के गांवों में मेरे व्यापक फील्डवर्क ने मुझे वर्तमान धार्मिक प्रथाओं में शामिल गतिशीलता को समझने और जवाब देने में भी मदद की।

इस कार्य का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य पुरातनवाद को कई श्रेणियों के तहत विभिन्न समूहों द्वारा की जाने वाली एक जीवित प्रथा के रूप में देखना था। इस कार्य के पहले भाग में ऐतिहासिक कलाकृतियों के अध्ययन की पृष्ठभूमि में समकालीन ग्रामीण धार्मिक प्रथाओं के अध्ययन से एक समग्र चित्र सामने आया। फोकस उन महत्वपूर्ण सवालों के जवाब ढूंढने पर था कि ऐतिहासिक कलाकृतियों ने अतीत और वर्तमान में क्या बड़ी भूमिका निभाई है? ग्रामीण समुदाय अपने स्थानीय देवताओं, देवताओं के प्रति अधिक निष्ठा और महत्व रखते हैं, जिन्हें अन्यथा ब्राह्मण ग्रंथों में स्थान, दर्जा और रूप नहीं दिया गया है। आमतौर पर, यह ऐतिहासिक कलाकृतियों की विशिष्टता और चमत्कारी खोज है जो उन्हें पवित्र बनाती है और बिना अधिक विचार-विमर्श के स्थानीय देवता के रूप में धार्मिक क्षेत्र में समाहित हो जाती है। उदाहरण के लिए, विष्णु की छवि टिकर ताल, पंचकुला में एक स्थानीय देवी बन गई है। कभी-कभी, खोजी गई ऐतिहासिक छवियां इतनी महत्वपूर्ण हो जाती हैं कि वे समुदायों को उनकी पहचान प्रदान करना बंद कर देती हैं। उदाहरण के लिए, बरहा कलां गांव का नाम वराह की एक छवि के नाम पर पड़ा, जो पास के एक तालाब से मिली थी।

<u>संदर्भ – ग्रंथ सूची</u>

1. अग्रवाल, आर.सी. "कुरुक्षेत्र के पास अमीन से शुंग स्तंभ।" ललित-कला 14, (1969): 50-56.
2. अग्रवाल, वी.एस. “पलवल से यक्ष।” जर्नल ऑफ़ उत्तर प्रदेश हिस्टोरिकल सोसाइटी 34-35 (1951-52): 188.

3. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण- वार्षिक रिपोर्ट (1922-23): 87.
4. अग्रवाल, अश्विनी. "मोरनी-का-ताल से शैव मूर्तियां।" रूप-लेखा, सं. LXVII- LXXI (जनवरी 2001): 83-84।
5. बनर्जी, जे.एन. हिंदू प्रतिमा विज्ञान का विकास. नई दिल्ली: मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, 1956, पुनर्मुद्रण 1985।
6. भान, एस. मिथाथल में उत्खनन (1968) और सतलज-यमुना विभाजन में अन्य अन्वेषण। कुरूक्षेत्र: कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, 1975।